॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथर्ववेदीय

श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इन मन्त्रोंका अर्थ प्रश्नोपनिषद्में दिया जा चुका है।]

प्रथम खण्ड

राम-नामके विविध अर्थ; भगवान्‌के साकार तत्त्वकी व्याख्या; मन्त्र एवं यन्त्रका माहात्म्य

ॐ सच्चिदानन्दमय महाविष्णु श्रीहरि जब रघुकुलमें दशरथजीके यहाँ अवतीर्ण हुए, उस समय उनका नाम 'राम' हुआ। इस नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'जो महीतलपर स्थित होकर भक्तजनोंका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजाके रूपमें सुशोभित होते हैं, वे राम हैं'—ऐसा विद्वानोंने लोकमें 'राम' शब्दका अर्थ व्यक्त किया है। ('**राति राजते वा महीस्थितः सन् इति रामः**'—इस विग्रहके अनुसार '**राति**' या '**राजते**' का प्रथम अक्षर 'रा' और '**महीस्थितः**' का आदि अक्षर 'म' लेकर 'राम' बनता है; इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये।) राक्षस जिनके द्वारा मरणको प्राप्त होते हैं, वे राम हैं। अथवा अपने ही उत्कर्षसे इस भूतलपर उनका 'राम' नाम विख्यात हो गया (उसकी प्रसिद्धिमें कोई व्युत्पत्तिजनित अर्थ ही कारण है, ऐसा नहीं मानना चाहिये)। अथवा वे अभिराम (सबके मनको रमानेवाले) होनेसे राम हैं। अथवा जैसे राहु मनसिज (चन्द्रमा)-को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसोंको मनुष्यरूपसे प्रभाहीन (निष्प्रभ) कर देते हैं, वे राम हैं। अथवा वे राज्य पानेके अधिकारी महीपालोंको अपने आदर्श चरित्रके द्वारा धर्ममार्गका उपदेश देते हैं, नामोच्चारण करनेपर ज्ञानमार्गकी प्राप्ति कराते हैं, ध्यान करनेपर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रहकी पूजा करनेपर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; इसलिये इस भूतलपर उनका 'राम' नाम पड़ा होगा। परंतु यथार्थ बात तो यह है कि उस अनन्त, नित्यानन्दस्वरूप, चिन्मय ब्रह्ममें योगीजन रमण करते हैं; इसलिये वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पदके द्वारा प्रतिपादित होता है॥ १—६॥

यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, प्राकृत अवयवरहित और (पाञ्चभौतिक) शरीरसे रहित है, तथापि भक्तजनोंके अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये वह चिन्मय देहको प्रकट करता है—भक्तोंके स्नेहवश निराकार ब्रह्म भी नराकार धारण कर लेता है॥ ७॥

भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित जो देवता हैं, उन्हींकी पुरुष, स्त्री, अङ्ग और अस्त्र आदिके रूपमें कल्पना होती है अर्थात् भिन्न-भिन्न देवता ही अस्त्र आदिके रूपमें भगवान्‌की सेवा करते हैं, परंतु वे भगवत्स्वरूपसे पृथक् नहीं हैं। भगवान् जो अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करते हैं, उनमें किसीके दो, किसीके चार, किसीके छः, आठ, दस, बारह, सोलह और अठारह—इतने-इतने हाथ कहे गये हैं। ये शङ्ख आदिसे सुशोभित होते हैं। 'विश्वरूप' धारण करनेपर भगवान्‌के सहस्रों हाथ हो जाते हैं। उन सभी विग्रहोंके भिन्न-भिन्न रंग और वाहन आदिकी भी

कल्पना होती है। उनके लिये नाना प्रकारकी शक्तियों तथा सेना आदिकी भी कल्पना की जाती है। इस प्रकार परब्रह्म परमात्मामें विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश आदिके रूपमें पञ्चविध शरीरकी कल्पना होती है और उन सबके लिये पृथक्-पृथक् सेना आदिकी कल्पना होती है॥ ८—१०॥

ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिपर्यन्त समस्त जड-चेतनका वाचक जो यह 'राम' मन्त्र है, यह अर्थके अनुरूप ही है—जैसा इस नामका अर्थ है, वैसा ही इसका प्रभाव भी है। अतः इस राम-मन्त्रकी दीक्षा लेकर सदा इसका जप करना चाहिये। इसके बिना भगवान्‌की प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती। क्रिया, कर्म इत्यादिका अनुष्ठान करनेवाले जो साधक हैं, उनके अर्थ (अभीष्ट प्रयोजन)-को मन्त्र बता देता है—उसकी सिद्धिका निश्चय करा देता है; अतः मनन (निश्चय) और त्राणन (रक्षा) करनेके कारण वह मन्त्र कहलाता है। वह सम्पूर्ण अभिधेयोंका वाचक होता है। स्त्री-पुरुष उभयरूपमें विराजमान जो भगवान् हैं, उनके लिये प्रतीकरूप विग्रह-यन्त्रका निर्माण है। यदि बिना यन्त्रके पूजा होती है तो देवता प्रसन्न नहीं होते॥ ११—१३॥

द्वितीय खण्ड

श्रीरामके स्वरूपका कथन; राम-बीजकी व्याख्या

भगवान् किसी कारणकी अपेक्षा न रखकर स्वतः प्रकट होते या नित्य विद्यमान रहते हैं, इसलिये 'स्वभू' कहलाते हैं। चिन्मय प्रकाश ही उनका स्वरूप है; अतः वे ज्योतिर्मय हैं। रूपवान् होते हुए भी वे अनन्त हैं—देश, काल और वस्तुकी सीमासे परे हैं। उन्हें प्रकाशित करनेवाली कोई दूसरी शक्ति नहीं है, वे अपनेसे ही प्रकाशित होते हैं। वे ही अपनी चैतन्यशक्तिसे सबके भीतर जीवरूपसे प्रतिष्ठित होते हैं तथा वे ही रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणका आश्रय लेकर समस्त जगत्‌की उत्पत्ति, रक्षा और संहारके कारण बनते हैं; ऐसा होनेसे ही यह जगत् सदा प्रतीतिगोचर होता है। यह जो कुछ दिखायी देता है, सब ॐकार है—परमात्मस्वरूप है। जैसे प्राकृत वटका महान् वृक्ष वटके छोटे-से बीजमें स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् रामबीजमें स्थित है। ('राम्' ही रामबीज है।) ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीन मूर्तियाँ 'राम्' के रकारपर आरूढ हैं तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहारकी त्रिविध शक्तियाँ अथवा बिन्दु, नाद और बीजसे प्रकट होनेवाली रौद्री, ज्येष्ठा एवं वामा—ये त्रिविध शक्तियाँ भी वहीं स्थित हैं। ('राम्' का अक्षर-विभाग इस प्रकार है—र्, आ, अ, म्। इनमें रकार तो साक्षात् श्रीरामका वाचक है तथा उसपर आरूढ़ जो 'आ', 'अ' और 'म्' हैं, ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीन देवोंके और उपर्युक्त त्रिविध शक्तियोंके वाचक हैं।) इस बीज-मन्त्रमें प्रकृति-पुरुषरूप सीता तथा राम पूजनीय हैं। इन्हीं दोनोंसे चौदह भुवनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें ही इन लोकोंकी स्थिति है तथा उन आकार, अकार, मकाररूप ब्रह्मा, विष्णु, शिवमें इन सबका लय भी होता है। अतः श्रीरामने माया (लीला)-से ही अपनेको मानव माना। जगत्‌के प्राण एवं आत्मारूप इन भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। इस प्रकार नमस्कार करके गुणोंके भी पूर्ववर्ती परब्रह्मस्वरूप इन नमस्कारयोग्य देवता श्रीरामके साथ अपनी एकताका उच्चारण करे अर्थात् दृढ भावनापूर्वक 'मैं श्रीराम ही ब्रह्म हूँ' यों कहे॥ १—४॥

तृतीय खण्ड

राम-मन्त्रकी व्याख्या; जपकी प्रक्रिया तथा ध्यान

'नमः' यह नाम जीववाचक है और 'राम' इस पदके द्वारा आत्माका प्रतिपादन होता है तथा 'राम' के साथ एकात्मताको प्राप्त हुई जो 'आय' (रामाय)-रूपा चतुर्थी विभक्ति है, उसके द्वारा जीव और आत्मा (परमात्मा)-की एकता बतलायी जाती है। '**रामाय नमः**' यह मन्त्र वाचक है और भगवान् राम इसके वाच्य हैं; इन दोनोंका संयोग (अर्थात् मन्त्रजपपूर्वक भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन) सम्पूर्ण साधकोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जैसे जो नामी होता है, वह अपने वाचक नामका

उच्चारण होनेपर सम्मुख आ जाता है, उसी प्रकार बीजात्मक मन्त्र 'राम्'- को भी समझना चाहिये अर्थात् इसके द्वारा बुलानेपर भी भगवान् मन्त्र-जप करनेवाले साधकके सम्मुख आ जाते हैं। बीज और शक्तिका क्रमशः दाहिने और बायें स्तनोंपर न्यास करे और कीलकका नियमपूर्वक मध्यमें अर्थात् हृदयमें न्यास करे। (यहाँ 'रां' यह बीज है, 'मां' यह शक्ति है और 'यं' यह कीलक है।) इस न्यासके साथ ही साधक अपनी मनोवाञ्छासिद्धिके लिये विनियोग भी करे। सभी मन्त्रोंका यही साधारण क्रम है—अर्थात् पहले बीजका, फिर शक्तिका, फिर कीलकका न्यास तथा अन्तमें अपनी मनोरथसिद्धिके लिये विनियोग होता है। यहाँ ध्यानकालमें भावना करनी चाहिये कि दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम अनन्त परमात्मारूप हैं। वे तेजमें प्रज्वलित अग्निके सदृश हैं। (अथवा राम्-मन्त्र अनन्त—'आ' और तेजोमय अग्नि 'र्' के साथ एक ही समय उच्चारित होता है। 'र्' और 'आ' का एक साथ उच्चारण होनेसे 'रा' बनता है।) वे श्रीराम जब शीतल किरणोंवाली अर्थात् सौम्य कान्तिमती श्रीसीताजीके साथ संयुक्त होते हैं, तब उनसे अग्नीषोमात्मक (पुरुष और स्त्रीरूप) जगत्की उत्पत्ति होती है। (अथवा अनुष्णगु-शब्दका अर्थ है चन्द्रमा (म्) और विश्वका अर्थ है वैश्वानर—अग्नि (रा); अतः वैश्वानर-बीज 'रा' जब चन्द्र-बीज 'म्' से व्याप्त होता है, तब अग्नीषोमात्मक जगत्का वाचक 'राम्' यह मन्त्र बनता है।) श्रीराम सीताके साथ उसी प्रकार शोभा पाते हैं, जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकाके साथ सुशोभित होते हैं॥ १—६॥

ध्यान

कौसल्यानन्दन श्रीराम अपनी प्रकृति—ह्लादिनीशक्ति श्रीसीताजीके साथ विराजमान हैं। उनका वर्ण श्याम है। वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उनके सिरपर जटाभार सुशोभित है। उनके दो भुजाएँ हैं। कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे हैं। गलेमें रत्नोंकी माला चमक रही है। वे स्वभावतः धीर (निर्भय एवं गम्भीर) हैं। धनुष धारण किये हुए हैं। उनके मुखपर सदा प्रसन्नता छायी रहती है। वे संग्राममें सदा ही विजयी होते हैं। अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यशक्तियाँ उनकी शोभा बढ़ाती हैं। इस जगत्की कारणभूता मूल प्रकृतिरूपा परमेश्वरी सीता उनके वाम अङ्कको विभूषित कर रही हैं। सीताजीके श्री-अङ्गोंकी कान्ति सुवर्णके सदृश गौर है। उनके भी दो भुजाएँ हैं। वे समस्त दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं तथा हाथमें कमल धारण किये हुए हैं। उन चिदानन्दमयी सीतासे सटकर बैठे हुए भगवान् श्रीराम बड़े हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं। दक्षिण भागमें श्रीरघुनाथजीके छोटे भाई सुवर्ण-गौर कान्तिवाले श्रीलक्ष्मणजी हाथमें धनुष-बाण लिये खड़े हैं। उस समय श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीसीताजीका एक त्रिकोण बन जाता है॥ ७—९॥

चतुर्थ खण्ड

षडक्षर-मन्त्रका स्वरूप; भगवान् श्रीरामका स्तवन

जैसे श्रीराम-मन्त्रका 'राम्' यह बीज बताया गया है, उसी प्रकार उसका शेष अंश भी बताया जाता है। स्व अर्थात् 'राम' शब्दके चतुर्थ्यन्त रूपके साथ जीव—अर्थात् 'नमः' पद हो तो '**रां रामाय नमः**' यह षडक्षर-मन्त्र बनता है। इस प्रकार षडक्षर-मन्त्र सिद्ध होनेपर दो त्रिकोणरूप बनता है। (अर्थात् छहों अक्षरोंके न्यासके लिये छः कोण बनते हैं।) एक बार जब देवता भगवान्का दर्शन करनेके लिये आये, तब उन्होंने कल्पवृक्षके नीचे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान जगदीश्वर श्रीरघुनाथजीका इस प्रकार स्तवन किया—"कामरूपधारी तथा मायामय स्वरूप ग्रहण करनेवाले श्रीरामको नमस्कार है। (अथवा कामबीज 'क्लीं' और मायामय बीज 'ह्रीं' से युक्त श्रीराम-मन्त्रको नमस्कार है—**क्लीं रामाय नमः ह्रीं रामाय नमः**।) वेदके आदिकारण ॐकारस्वरूप श्रीरामको नमस्कार है। (इससे '**ॐ रामाय नमः**' इस मन्त्रकी सूचना मिलती है।) "रमा श्रीसीताजीको धारण करनेवाले अथवा रमणीय अधरोंवाले, आत्मरूप, नयनाभिराम श्रीरामको नमस्कार है। श्रीजानकीजीका शरीर ही जिनका आभूषण अथवा जो श्रीजनकनन्दिनीके श्रीविग्रहको स्वयं ही शृङ्गार आदिसे विभूषित करते हैं, जो राक्षसोंके संहारक तथा कल्याणमय विग्रहवाले हैं तथा जो दशमुख रावणका अन्त करनेके लिये यमराजस्वरूप हैं, उन मङ्गलमय रघुवीरको नमस्कार है। हे रामभद्र!

हे महाधनुर्धर! हे रघुवीर! हे नृपश्रेष्ठ! हे दशवदन-विनाशक! हमारी रक्षा कीजिये तथा हमें ऐसी श्री—ऐश्वर्य-सम्पदा दीजिये, जिसका सम्बन्ध आपसे हो अर्थात् जो भगवत्प्रीत्यर्थ ही उपयोगमें लायी जा सके*॥ १—६॥

पञ्चम खण्ड

खरके वधसे लेकर वाली-वधतकका संक्षिप्त चरित्र

'रघुवीर! आप हमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति कराइये।' भगवान् श्रीरामने जबतक खर नामक राक्षसका वध किया, उतने समयतक देवता आदि उपर्युक्त रूपसे उनकी स्तुति करके उनके साथ सुखपूर्वक स्थित हुए। देवताओंकी ही भाँति ऋषि भी भगवान्‌की स्तुति करते रहे। उस समय खर आदिके मारे जानेपर राक्षसकुलोत्पन्न रावण (मारीचके साथ) वनमें आया और उसने अपने ही विनाशके लिये रामपत्नी सीताजीको हर लिया। उन दिनों सीता भी वनमें ही रहती थीं। उसने 'वन' से उनको हरण किया, इससे वह राक्षस रावण कहलाया ('राम' शब्दसे 'रा' एवं 'वन' शब्दसे 'वन' लेकर 'रावण' नाम बना) अथवा दूसरोंको रुलानेके कारण वह रावण कहलाता था। (अथवा एक दिन दशाननने कैलासको उठा लिया था, तब महादेवजीने कैलासपर बहुत भार डाल दिया। उस समय) दशाननने बड़ा रव किया, इसीसे उसका नाम रावण हो गया। तदनन्तर श्रीराम और लक्ष्मण सीतादेवीका पता लगानेके व्याजसे वनभूमिपर विचरने लगे। सामने कबन्ध नामक असुरको उपस्थित देख दोनों भाइयोंने उसे मार डाला और उस कबन्धके कथनानुसार वे दोनों शबरीके आश्रमपर गये। वहाँ शबरीने उनका बड़ी भक्तिसे स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् आगे जानेपर उन्हें वायुपुत्र भक्तवर हनुमान्‌जी मिले, जिन्होंने (मध्यस्थरूपमें) कपिराज सुग्रीवको बुलाकर उनके साथ दोनों भाइयोंकी मैत्री करायी। तत्पश्चात् दोनों भाइयोंने सुग्रीवसे अपना सब हाल आदिसे अन्ततक कह सुनाया॥ १—५॥

सुग्रीवको श्रीरामके पराक्रममें संदेह था, अतः उन्होंने श्रीरामको दुन्दुभिनामक राक्षसका विशाल शरीर दिखाया (जिसे वालीने मार गिराया था); श्रीरामने दुन्दुभिके उस शवको अनायास ही बहुत दूर फेंक दिया। इसके सिवा एक ही बाणसे सात तालवृक्षोंको तत्काल बींध डाला और इस प्रकार अपने मित्रको आश्वासन देकर प्रसन्नताका अनुभव किया। इससे कपिराज सुग्रीवको बड़ा हर्ष हुआ। इसके बाद वे श्रीरघुनाथजी सुग्रीवके नगरमें गये। वहाँ वालीके भाई सुग्रीवने बड़ी विकट गर्जना की। उस गर्जनाको सुनकर वाली बड़े वेगसे घरके बाहर निकला। श्रीरामने युद्धमें उस वालीको मार गिराया और किष्किन्धाके राज्यसिंहासनपर सुग्रीवको बिठा दिया॥ ६—९॥

षष्ठ खण्ड

शेष चरित्रका संक्षिप्त वर्णन; आवरण-पूजाके लिये यन्त्रस्थ देवताओंका निरूपण

तदनन्तर सुग्रीवने वानरोंको बुलाकर कहा—'वानर-वीरो! तुम सब दिशाओंकी बातें जानते हो। इस समय शीघ्र यहाँसे जाओ और मिथिलेशकुमारी सीताको आज ही ढूँढ़ लाकर रघुनाथजीको अर्पित करो।' (इस आदेशके अनुसार सब दिशाओंकी ओर बहुत-से वानर चल पड़े।) तत्पश्चात् हनुमान्‌जी (जो कुछ प्रमुख वानरोंके साथ दक्षिण दिशामें खोज करनेके लिये भेजे गये थे) समुद्र लाँघकर लङ्कामें गये। वहाँ सीताजीका दर्शन करके उन्होंने अनेक असुरोंका वध किया और लङ्कामें आग लगा दी। फिर वहाँसे श्रीरामके पास लौटकर सब समाचार यथावत् कह सुनाया। तब भगवान् श्रीरामने क्रोधका अभिनय किया—रावणके प्रति क्रोधयुक्त होकर उन वानरोंको बुलाया और उनके साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर लङ्कापुरीपर आक्रमण किया। लङ्काका भलीभाँति निरीक्षण करके भगवान्‌ने वहाँके राजा रावणके साथ युद्ध छेड़ दिया।

---

* कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च॥
नमो वेदादिरूपाय ॐकाराय नमो नमः। रमाधाराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये॥

उस युद्धमें भाई कुम्भकर्ण तथा पुत्र इन्द्रजित्के सहित रावणको मारकर उन्होंने विभीषणको वहाँका राजा बनाया और जनकनन्दिनी सीताको साथ ले उन्हें अपने वाम अङ्कमें बिठाकर उन सब वानरोंके साथ अपनी पुरी अयोध्याको प्रस्थान किया॥ १—६॥

अब द्विभुजरूपधारी श्रीरघुनाथजी अयोध्याके राजसिंहासनपर विराजमान हैं। वे धनुष धारण किये हुए हैं। उनका चित्त स्वभावतः प्रसन्न है। वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमयी[१] और बायें हाथमें तेजको प्रकाशित करनेवाली धनुर्मयी[२] मुद्रा धारण करके वे सच्चिदानन्दमय परमेश्वर व्याख्यानकी[३] मुद्रामें स्थित हैं॥ ७-८॥

(इस प्रकार देवताओंकी स्तुतिसे लेकर श्रीरामके राज्याभिषेकतककी लीलाका संक्षेपसे वर्णन करके अब पुनः पूर्वोक्त षट्कोणका अनुसरण करके आवरण-पूजाके लिये यन्त्रस्थ देवताओंका वर्णन किया जाता है।)

श्रीरामचन्द्रजीके उत्तर और दक्षिणभागमें क्रमशः शत्रुघ्न और भरतजी स्थित हैं। हनूमान्जी श्रोताके रूपमें भगवान्के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हैं। वे भी त्रिकोणके भीतर ही स्थित हैं। भरतके नीचे सुग्रीव हैं और शत्रुघ्नके नीचे विभीषण खड़े हैं। भगवान्के पीछेकी ओर छत्र-चँवर धारण किये लक्ष्मणजी विराजमान हैं।[४] लक्ष्मणजीसे नीचे स्तरमें ताड़के पंखे हाथमें लिये हुए दोनों भाई भरत-शत्रुघ्न खड़े हैं। इस प्रकार लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको लेकर दूसरा त्रिकोण और बन जाता है। इस तरह छः कोण होते हैं। भगवान् श्रीराम पहले तो अपने बीज-मन्त्र-स्वरूप दीर्घ अक्षरोंके ही आवरणसे घिरे हुए हैं। (वह प्रथम आवरण इस प्रकार है—'**रां**', '**रीं**', '**रूं**', '**रैं**', '**रौं**', '**रः**')॥ ९—११॥

द्वितीय आवरण यों है—वासुदेव, शान्ति, संकर्षण, श्री, प्रद्युम्न, सरस्वती, अनिरुद्ध और रति। ये क्रमशः भगवान्के आग्नेय आदि दिशाओंमें स्थित हैं। द्वितीय आवरणमें भगवान् इन सबसे संयुक्त रहते हैं। तृतीय आवरणमें हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद तथा जाम्बवान् और शत्रुघ्नकी गणना है अर्थात् इन सबसे जब श्रीरघुनाथजी संयुक्त होते हैं, तब तृतीय आवरण सिद्ध होता है। इनके अतिरिक्त धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्रसे आवृत होनेपर भी तृतीय आवरण ही रहता

जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने । भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे॥
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥ (२—५)

१. ज्ञान-मुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

तर्जन्यङ्गुष्ठकौ सक्तावग्रतो हृदि विन्यसेत् ।
वामं हस्ताम्बुजं वामे जानु मूर्धनि विन्यसेत् । ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य वल्लभा॥

दाहिने हाथकी तर्जनी और अँगूठेको सटाकर आगेकी ओर छातीपर रखे और बायें हाथको बायें घुटनेके ऊपर रखे। यह ज्ञानमुद्रा है, जो श्रीरामचन्द्रजीको बहुत प्रिय है।

२. धनुर्मयी मुद्रा इस प्रकार है—

वामस्य मध्यमाग्रं तु तर्जन्यग्रे नियोजयेत् ।
अनामिकां कनिष्ठां च तस्याङ्गुष्ठेन पीडयेत् । दर्शयेद् वामके स्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता॥

बायें हाथकी मध्यमा अङ्गुलिके अग्रभागको तर्जनीके अग्रभागमें सटा दे और अनामिका तथा कनिष्ठिकाको अँगूठेसे दबाये। इस प्रकारकी भङ्गी बायें कन्धेपर प्रदर्शित करे। यही धनुर्मुद्रा बतायी गयी है।

३. व्याख्यानमुद्राका लक्षण यों है—

दक्षिणाङ्गुष्ठतर्जन्यावग्रलग्ने पराङ्गुलीः । प्रसार्य संहतोत्ताना एषा व्याख्यानमुद्रिका॥
रामस्य च सरस्वत्या अत्यन्तं प्रेयसी मता । ज्ञानव्याख्या पुस्तकानां युगपत्सम्भवः स्मृतः॥

दाहिने हाथके अँगूठे और तर्जनी अङ्गुलिके अग्रभाग परस्पर सटे हों और शेष तीन अङ्गुलियोंको फैलाकर रखा जाय। वे फैली अङ्गुलियाँ भी परस्पर सटी हुई और उत्तान हों। यह व्याख्यान-मुद्रा है। यह श्रीरामको और सरस्वतीको बहुत अधिक प्रिय है। इसके द्वारा ज्ञान, व्याख्यान तथा पुस्तक—तीनों मुद्राओंका एक साथ प्रकाशन माना गया है।

४. पहले लक्ष्मणको भगवान्के दक्षिण भागमें स्थित बता आये हैं और यहाँ पश्चिमभागमें उनकी स्थिति बतायी जाती है; परंतु इसमें विरोध नहीं है। वहाँ वनवासके समयका ध्यान है; अतः उसमें भरत आदिकी उपस्थिति नहीं है। यहाँ राज्याभिषेकके समय भरतजी भी हैं; अतः उस समय लक्ष्मणजीका पृष्ठभागमें स्थित होना उचित ही है।

है। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्रमा, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त—इन दस दिक्पालोंसे जब भगवान् आवृत होते हैं, तब चतुर्थ आवरण होता है। (इनमें इन्द्र पूर्वके, अग्नि अग्निकोणके, यम दक्षिणके, निर्ऋति नैर्ऋत्यकोणके, वरुण पश्चिमके, वायु वायव्यकोणके, चन्द्रमा उत्तरके और ईशान—शिव ईशानकोणके अधिपति हैं। इन सबकी अपनी-अपनी दिशामें पूजा करनी चाहिये। ब्रह्माका स्थान पूर्व दिशा और ईशानकोणके मध्यभागमें है तथा अनन्तका स्थान नैर्ऋत्यकोण और पश्चिमके मध्यभागमें है। इन्द्र आदिके बीज-मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—**लं रं मं क्षं वं यं सं हं आं नं**) इन दिक्पालोंके बाह्यभागमें उनके ही वज्र आदि आयुध हैं, जिनसे आवृत भगवान् पूजनीय होते हैं। (उन आयुधोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—इन्द्रका वज्र, अग्निका शक्ति, यमका दण्ड, निर्ऋतिका खड्ग, वरुणका पाश, वायुका अङ्कुश, चन्द्रमाका गदा, ईशानका शूल, ब्रह्माका पद्म और अनन्तका चक्र।) उसी आवरणमें नल आदि वानर भी भगवान्‌की शोभा बढ़ाते हैं। साथ ही वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनि भगवान्‌की उपासनामें संलग्न रहते हैं॥ १२—१६॥

सप्तम खण्ड

पूजा-यन्त्रका विस्तृत वर्णन

इस प्रकार संक्षेपसे पूजा-यन्त्रका वर्णन किया गया। अब उसका पूर्णतः निर्देश किया जाता है। समरेखाओंके दो त्रिकोण बनाकर उनके मध्यभागमें दो प्रणवोंका पृथक्-पृथक् उल्लेख करे। फिर उन दोनोंके बीचमें आद्यबीज (रां) लिखकर उसके नीचे साध्य-कार्यका उल्लेख करे। साध्यका नाम द्वितीयान्त होना चाहिये। आद्यबीजके ऊपरी भागमें साधकका नाम लिखना चाहिये। साधकका नाम षष्ठ्यन्त रहना चाहिये। तत्पश्चात् बीजके दोनों ओर—वाम-दक्षिण पार्श्वोंमें एक-एक 'कुरु' पदका उल्लेख करना चाहिये। बीजके बीचमें और साध्यके ऊपर श्रीबीज 'श्रीं' लिखे। बुद्धिमान् पुरुष यह सब बीज आदि इस प्रकार लिखे कि वे दोनों प्रणवोंसे सम्पुटित रहें। फिर छहों कोणोंमें दीर्घस्वरसे युक्त मूल-बीजका उल्लेख करे; साथ ही क्रमशः एक-एकके साथ '**हृदयाय नमः**', '**शिरसे स्वाहा**' इत्यादिको भी अङ्कित करे। (अर्थात् '**रां हृदयाय नमः**', '**रीं शिरसे स्वाहा**', '**रूं शिखायै वषट्**', '**रैं कवचाय हुम्**', '**रौं नेत्राभ्यां वौषट्**' तथा '**रः अस्त्राय फट्**'—इस प्रकार छः वाक्य छः कोणोंमें लिखने चाहिये।) कोणोंके पार्श्वभागमें रमाबीज (श्रीं) और मायाबीज (ह्रीं) लिखे तथा उसके आगे काम-बीज (**क्लीं**)-का उल्लेख करे। कोणके अग्रभाग और भीतरी भागोंमें क्रोध-बीज (हुम्) लिखकर मन्त्र-साधक उस 'हुम्' के दोनों पार्श्वोंमें सारस्वतबीज (ऐं) लिखे। फिर तीन वृत्त (गोलाकार रेखाएँ) बनाये (इनमें एक वृत्त तो षट्कोणके ऊपर होगा, एक मध्यमें होगा और एक दलोंके अग्रभागमें रहेगा)। इन तीन वृत्तोंके साथ-साथ एक अष्टदल कमल भी लिखे। कमलके जो केसर हैं, उनमें दो-दो अक्षरके क्रमसे सभी स्वर-वर्णोंका उल्लेख करे। आठों दलोंमें स्वरोंके ऊपर व्यञ्जन-वर्णोंके आठ वर्गोंका लेखन करे। (आठ वर्ग ये हैं—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग और लवर्ग)। उन आठों दलोंमें अष्टवर्गके ऊपर आगे बताये जानेवाले माला-मन्त्रके ४७ वर्णोंका एक-एक दलमें छः-छः वर्णके क्रमसे उल्लेख करे। अन्तिम दलमें अवशिष्ट पाँच वर्णोंका ही उल्लेख होगा। पूर्वोक्त प्रकारसे पुनः एक अष्टदल कमल बनाये। उसके आठ दलोंमें '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे। उसके केसरमें रमा-बीज (श्रीं) लिखे। उसके ऊपर बारह दलोंका कमल बनाये और उसके बारहों दलोंमें द्वादशाक्षर-मन्त्र '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इसके एक-एक अक्षरको अङ्कित करे॥ १—८॥

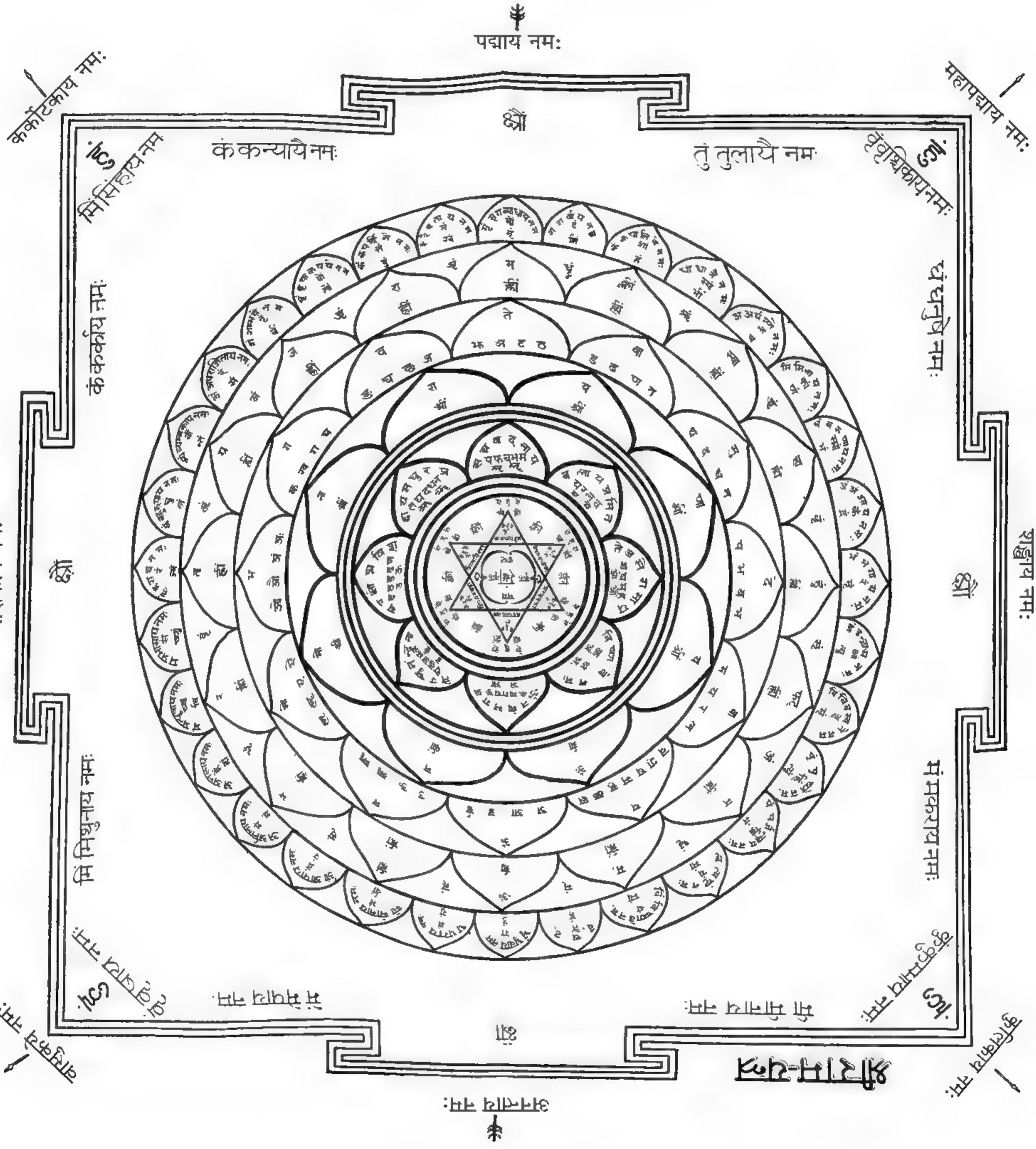
पद्माय नमः
ॐ
कर्कोटकाय नमः
महापद्माय नमः
कं कन्यायै नमः
तुं तुलायै नमः
सिं सिंहाय नमः
वृं वृश्चिकाय नमः
कें कर्कायै नमः
धनुषे नमः
शङ्खाय नमः
ॐ
ॐ
तक्षकाय नमः
मं मकराय नमः
मिं मिथुनाय नमः
कुलिकाय नमः
वासुकये नमः
ॐ
अनन्ताय नमः

कमलपुट

अष्टम खण्ड

पूजा-यन्त्रके अगले अङ्गोंका वर्णन

उक्त द्वादशदल कमलके केसरोंमें 'अकार' से लेकर 'क्ष' तकके वर्णोंको (१६ स्वर और ३५ व्यञ्जन) गोलाकार लिखे। (एक-एक केसरमें चार-चार अक्षर होंगे, किंतु अन्तिम केसरमें सात होंगे।) उसके बाह्यभागमें पुनः षोडशदल कमल लिखे और उसके केसरोंमें माया-बीज (ह्रीं)-का उल्लेख करे। उसके षोडश दलोंमें एक-एक अक्षरके क्रमसे 'हुं' 'फट्' 'नमः' तथा द्वादशाक्षर[1]-मन्त्रको अङ्कित करे। षोडश दलोंकी संधियोंमें मन्त्रवेत्ता पुरुष हनुमान्‌जी आदिके बीज-मन्त्र लिखे। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—**हं सं भं वं लं अं जं** और **शं**। (इनके अतिरिक्त धृष्टि आदिके बीज-मन्त्रोंका भी उल्लेख करे। ये हैं—**धं जं वं सं ऋं अं धं** और **सं**। मूल श्लोकमें आये हुए 'च' से इनका समुच्चय होता है।) उसके बाह्यभागमें बत्तीस दलोंका महाकमल बनाये, जो नाद और बिन्दुसे युक्त हो। उसके दलोंपर यत्नपूर्वक नारसिंह-मन्त्रराज[2]के बत्तीस अक्षरोंको लिखे। उन दलोंमें ही आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और सबको धारण करनेवाले[3] वषट्कारका न्यास एवं ध्यान करे। (वसु, रुद्र, आदित्य और वषट्कार—ये सब मिलकर बत्तीस हैं। इनका क्रमशः एक-एक दलमें ध्यान एवं न्यास करना चाहिये। ध्रुव, धर, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसु बताये गये हैं। विष्णुपुराण (१।१।१५))-के अनुसार हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, शम्भु, वृषाकपि, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र हैं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा तथा विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। उक्त बत्तीस दलोंवाले कमलके भी बहिर्भागमें भूगृह (भूपुर[4]) बनाये। उसके चारों दिशाओंमें वज्र तथा कोणोंमें शूलका चिह्न अङ्कित करे। उक्त भूपुरको तीन रेखाओंसे भी संयुक्त करे। ये रेखाएँ सत्त्वादि तीन गुणोंको सूचित करनेवाली होंगी। इसके सिवा—जैसे किसी मण्डपमें द्वार बने होते हैं, उसी प्रकार इसमें भी द्वार बनाये। साथ ही, उस भूपुरको राशि आदिसे भी विभूषित करे अर्थात् उसे ज्योतिर्मण्डलके आकारका बनाकर उसमें यथास्थान राशि आदि स्थापित करे। उक्त भूपुर-यन्त्रको शेषनागसे युक्त बनाये अर्थात् इस पुरमें प्रदर्शित करे कि इस यन्त्रको शेषनागने धारण कर रखा है। (अथवा उसको आठों दिशाओंसे आठों नागोंने धारण कर रखा है। उनके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख और कुलिक)॥ १—६॥

नवम खण्ड

पूजा-यन्त्रके शेष भागका वर्णन तथा श्रीरामके माला-मन्त्रका स्वरूप एवं माहात्म्य

इस प्रकार भूपुर-यन्त्र लिखकर उसकी चारों दिशाओंमें नारसिंह-बीज-मन्त्रका और कोणोंमें वाराह बीज-मन्त्रका अङ्कन करे। 'क्', 'ष्', 'र्', अनुग्रह (औ), इन्दु (अनुस्वार), नाद (ध्वनि) तथा शक्ति (माया) आदिसे युक्त जो '**क्ष्रौं**' मन्त्र है, वही नारसिंह बीज-मन्त्र है। यह ग्रहबाधा-निवारण तथा शत्रुमारण

---

१. द्वादशाक्षर-मन्त्र यह है—'ॐ ह्रीं भरताग्रज राम क्लीं स्वाहा'।

२. नारसिंह-मन्त्रराज इस प्रकार है—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

३. वषट्कारके साथ मूल श्लोकमें 'धाता' शब्दका प्रयोग हुआ है, उसका अर्थ 'धारण करनेवाला' है। वषट्कार दानके अर्थमें प्रयुक्त होता है। दानसे ही समस्त लोक धारण किये जाते हैं, अतः 'धाता' पद 'वषट्कार' का विशेषण ही है। 'धाता' को देवतावाचक इसलिये नहीं मानना चाहिये कि बारह आदित्योंकी श्रेणीमें धाता नामक आदित्यका नाम आ चुका है। अथवा 'धाता' पद ब्रह्माजीका वाचक है और 'वषट्कार' उसका विशेषण है। ब्रह्माजी ही सबको जन्म और जीवन प्रदान करते हैं, अतः उनके लिये 'वषट्कार' विशेषण देना उपयुक्त ही है।

४. भूपुर-यन्त्रका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—'भूमेश्चतुरस्रं सवज्रकं पीतं च'—चौकोर रेखा, वज्र-चिह्नका संयोग और पीला रंग—यह भूपुर है।

आदि कर्ममें विनियुक्त होकर अभीष्ट-सिद्धि दिलानेमें प्रसिद्ध है। अन्त्य वर्ण (हकार) अर्धीश अर्थात् उपकारसे युक्त हो, उसमें बिन्दु (अनुस्वार), नाद (ध्वनि) और शक्ति आदिका भी संयोग हो तो वह '**हुम्**' इस प्रकार वाराह-बीज होता है। इस यन्त्रमे उस '**हुम्**' को भी (कोणोंमें) अङ्कित करना चाहिये। अब श्रीरामसम्बन्धी माला-मन्त्रका वर्णन किया जायगा॥ १—३॥

इसमें पहले तो तार (प्रणव) है, फिर 'नमः' पद है। इसके बाद निद्रा (भ), फिर स्मृति (ग), फिर मेद (व), उसके बाद कामिका (तकार) है, जो रुद्र अर्थात् ए से युक्त है। तदनन्तर अग्नि (र), फिर मेधा (घ) है, जो अमर (उ)-से विभूषित है। उसके बाद दीर्घ कला (न) है, जो अक्रूर अर्थात् सौम्य—चन्द्रमा (अनुस्वार)से संयुक्त है। तत्पश्चात् ह्लादिनी (द) है। फिर दीर्घा कला (न) है, जो मानदा कला (आ)-से सुशोभित है। उसके बाद क्षुधा (य) है। यहाँतक '**ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय**' की सिद्धि हुई। तदनन्तर क्रोधिनी (र), अमोघा (क्ष्) और विश्व (ओ) है, जो मेधा (घ्)-से संयुक्त है। फिर दीर्घा (न) है, उसके बाद ज्वालिनी अर्थात् वह्निकला (व) है, जो सूक्ष्म—रुद्र (इकारकी मात्रा)-से युक्त है। फिर मृत्यु—प्रणवकला (श्) है, जो प्रतिष्ठा अर्थात् उच्चारणके आधारस्वरूप 'अ' से संयुक्त है। फिर ह्लादिनी (दा) और त्वक् (य) है। इससे '**रक्षोघ्नविशदाय**' इस मन्त्रभागका उद्धार हुआ। तदनन्तर क्ष्वेल (म), प्रीति (ध), अमर (उ), ज्योति (र), तीक्ष्णा (प्), जो अग्नि (र)-से संयुक्त है, श्वेता (स), जो अनुस्वारसे युक्त है, फिर कामिका अर्थात् तकारसे पाँचवाँ अक्षर (न), फिर 'ल' के बादका अक्षर (व), 'त' के बादवाले 'थ' के पीछेका अक्षर (द), फिर 'ध' के बादका अक्षर (न) है, जो अनन्त (आ)-से संयुक्त है। तत्पश्चात् दीर्घस्वरसे युक्त वायु (या), सूक्ष्म (ह्रस्व) इकारसे युक्त विष—मकार (मि), कामिका (त), फिर कामिकामें रुद्र (ए) का संयोग=(ते) है। तदनन्तर स्थिरा (ज) है, उसके बाद 'स' अक्षर और उसमें 'ए' की मात्रा है (से)। इस प्रकार '**मधुर-प्रसन्नवदनायामिततेजसे**' इस मन्त्रभागका उद्धार हुआ। इसके बाद तापिनी (ब), दीर्घ (ल) और उसमें भू यानी दीर्घ 'आ' की मात्रा है। फिर अनिल (य) है। इस प्रकार '**बलाय**' की सिद्धि हुई। तत्पश्चात् अनन्तग अनल अर्थात् 'आ' की मात्रासे युक्त रेफ (रा) है, फिर नारायणात्मक—अर्थात् आकारकी मात्रासहित काल—मकार (मा) है, उसके बाद प्राण (य) है। इससे '**रामाय**' की सिद्धि हुई। तदनन्तर विद्यायुक्त अम्भस् अर्थात् इकारकी मात्रासे युक्त वकार (वि) है। फिर पीता (ष्), रति (ण), और 'ल' के बादका (व) है, जो योनि (ए)-से युक्त है। इससे '**विष्णवे**' की सिद्धि हुई। अन्तमें पुनः नति—प्रणामका वाचक '**नमः**' शब्द और प्रणव है॥ ४—९॥

'**ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः ॐ॥**'

यह सैंतालीस अक्षरोंका मालामन्त्र राज्याभिषिक्त भगवान् श्रीरामसे सम्बन्ध रखता है। सगुण होनेपर भी उपासकोंके तीनों गुणोंका नाशक है (अर्थात् त्रिगुणमयी मायाका बन्धन नष्ट करके उन्हें दिव्य साकेत धामकी प्राप्ति करानेवाला है)। इस मन्त्रको पहले बताये हुए क्रमसे ही लिखना चाहिये॥ १०॥

यह उपर्युक्त यन्त्र सर्वात्मक—सर्वस्वरूप है। प्राचीन आचार्योंने इसका उपदेश किया है तथा ऋषि-महर्षियोंने भी इस मन्त्रका सेवन किया है। जो इसका सेवन करते हैं, उन्हें यह मोक्ष देता तथा उनकी आयु और आरोग्यकी वृद्धि करता है। इतना ही नहीं, यह पुत्रहीनोंको पुत्र भी देता है। अधिक कहनेसे क्या लाभ, इस मन्त्रके सेवनसे मनुष्य सब कुछ बहुत शीघ्र पा जाते हैं। इसके आश्रयसे उपासक धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदिको भी प्राप्त कर सकते हैं॥ ११-१२॥

यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य है। इस प्रकार जो यह यन्त्र बताया गया है, बिना उपदेशके किसी परम सामर्थ्यशाली पुरुषके लिये भी दुर्गम है। प्राकृत जनोंको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये॥ १३॥

दशम खण्ड

पूजाकी सविस्तर विधि

सर्वप्रथम द्वार[१]-पूजा करके पद्मासन[२] आदि आसनसे बैठे; फिर प्रसन्नचित्त होकर पञ्च-भूत आदिकी शुद्धि करे। (पृथिवी आदि तत्त्वोंको क्रमशः अपने कारणमें लय करते हुए अन्तमें सब कुछ परमात्मामें लय कर देना ही तत्त्वोंका शोधन है। भूतशुद्धि[३] यह प्राण-

१. द्वारपूजाकी विधि इस प्रकार है। आचार्य विधिपूर्वक स्नान करके पूर्वाह्ण-कृत्य (संध्या-वन्दन आदि नित्य-नियम) कर लेनेके पश्चात् वस्त्र और माला आदिसे अलङ्कृत हो पूजनादिरूप यज्ञके लिये मौनभावसे यज्ञ-मण्डपमें पदार्पण करे। वहाँ सविधि आचमन करके सामान्यतः पूजाके लिये अर्घ्य बनाकर रख ले। फिर मन्त्रयुक्त जलसे द्वारका अभिषेक करके उसका पूजन आरम्भ करे। द्वारके ऊपरी भागमें उदुम्बर (गूलर)-का काष्ठ हो; उसमें विघ्न, लक्ष्मी तथा सरस्वतीका ('विं विघ्नाय नमः, लं लक्ष्म्यै नमः, सं सरस्वत्यै नमः'—इन मन्त्रोंसे) आवाहन-पूजन करे। तत्पश्चात् द्वारकी दक्षिण शाखामें विघ्नका और वाम शाखामें क्षेत्रपालका पूजन करे। इन दोनोंके पार्श्वभागमें क्रमशः गङ्गा-यमुनाका पुष्प और जलसे पूजन करे। (दक्षिण द्वारभागमें गङ्गाका और वाम द्वारभागमें यमुनाका पूजन करना उचित है।) तत्पश्चात् द्वारके निचले भागमें देहलीपर 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण करते हुए 'अस्त्र' की पूजा करे। प्रत्येक द्वारपर इसी क्रमसे पूजन करना चाहिये।

२. पद्मासन लगानेकी विधि यह है। बायीं जाँघपर दाहिना चरण रखे और दायीं जाँघपर बायाँ चरण रखे। फिर दाहिने हाथको पीठकी ओरसे ले जाकर बायें चरणका अँगूठा दृढ़ताके साथ पकड़ ले। इसी प्रकार बायें हाथको पीछेकी ओरसे ले जाकर दाहिने चरणका अँगूठा पकड़ ले। फिर गर्दन झुकाकर अपनी ठोढ़ीको छातीसे सटा ले और नेत्रोंसे केवल नासिकाके अग्रभागको ही देखे। यह योगाभ्यासी पुरुषोंके उपयोगमें आनेवाला पद्मासन कहलाता है; यह रोगोंका नाश करनेवाला है। परंतु जो भगवान्‌की पूजा करने बैठा हो, वह दोनों हाथोंसे अँगूठा पकड़नेका कार्य न करे; क्योंकि वैसे करनेपर हाथ खाली न रहनेसे पूजा सम्भव न होगी।

३. भूतशुद्धिका प्रकार यह है। अपने शरीरमें पैरोंसे लेकर घुटनोंतकका भाग पृथिवीका स्थान है—ऐसी भावना करे। यह पृथिवीका स्थान चौकोर, वज्रके चिह्नसे युक्त और पीतवर्ण है; इसमें 'लं' बीज अङ्कित है। इस प्रकार चिन्तन करे। घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागको जलका स्थान मानकर यह भावना करे कि इसकी आकृति अर्धचन्द्रके समान और वर्ण शुक्ल है। इसमें कमलका चिह्न है। इस जलमण्डलमें 'वं' बीज अङ्कित है। नाभिसे लेकर कण्ठतकके भागको भावनाद्वारा त्रिकोणाकार अग्निमण्डलके रूपमें देखे। उसका वर्ण लाल है, उसमें स्वस्तिकका चिह्न और 'रं' बीज अङ्कित है—इस प्रकार चिन्तन करे। कण्ठसे ऊपर भौंहोंके मध्यतकका भाग वायुमण्डल है। उसका वर्ण कृष्ण है, आकृति षट्कोण है और वह छः बिन्दुओंसे चिह्नित है। उसमें 'यं' बीज अङ्कित है। यों ध्यानद्वारा देखे। भौंहोंके मध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतकका भाग आकाशमण्डल है। उसकी आकृति गोल और रंग धूएँके समान है। उसमें ध्वजका चिह्न और 'हं' बीज अङ्कित है। ऐसा ध्यान करे। इस प्रकार चिन्तन करनेके पश्चात् उन भूतोंका लय करे। पृथिवीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें तथा आकाशको अव्यक्त प्रकृतिमें विलीन करे। यह प्रकृति ही अपरब्रह्म अथवा माया कहलाती है; इसका परमात्मामें लय करे। इस प्रकार भावनाद्वारा समस्त देहादि प्रपञ्चका परमात्मामें लय करके कुछ क्षणतक परमात्मरूपसे ही स्थित रहे, अर्थात् ध्यानद्वारा यह देखे कि मैं परमात्मामें मिलकर उनसे अभिन्न हो गया हूँ। फिर (ध्यानसे जगनेपर) अपने लिये भावनाद्वारा ही परम पवित्र शरीरकी सृष्टि करे। मानो परमात्मासे शब्द-ब्रह्मात्मिका माया प्रकट हुई है। यही जगन्माता और परा प्रकृति है। इस जगन्मातासे आकाश उत्पन्न हुआ है। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवी प्रकट हुई है। इन विशुद्ध भूतोंसे अपना यह तेजोमय शरीर निर्मित हुआ है, जो परम पवित्र होनेके कारण आराध्यदेवकी आराधनाके सर्वथा योग्य है। उस शरीरमें सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, समस्त देवतारूप, सम्पूर्ण मन्त्रमय एवं कल्याणमय परमात्मा ही आत्मा एवं कारणरूपसे विराजमान हैं। इस प्रकारकी भावना ही मुख्यतः भूतशुद्धि कही गयी है।

भूतशुद्धिकी दूसरी प्रक्रिया इस प्रकार है। साधक यह भावना करे कि मेरा हृदय एक प्रफुल्ल कमल है, जो प्रणवके द्वारा विकासको प्राप्त हुआ है। धर्म ही इस हृदयकमलका मूल और ज्ञान ही नाल (मृणाल) है। यह बहुत ही शोभायमान है। अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य ही इसके आठ दल हैं। वैराग्य ही इसकी कर्णिका (मध्यभाग) है। इस कर्णिकामें जीवात्मा विराजमान है, जिसकी आकृति दीपककी ज्योतिके समान है। ऐसी भावनाके साथ साधक उस जीवात्माको सुषुम्णा नाडीके मार्गसे ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाय और उसे परमात्मामें मिला दे। उस समय वह अपनेको परमात्मासे अभिन्न देखता हुआ 'सोऽहम्' मन्त्रका चिन्तन करता रहे। फिर योगयुक्त विधिसे अन्य सब (पृथिवी आदि) तत्त्वोंको भी वहीं परमात्मामें विलीन कर दे। तत्पश्चात् अनादि जन्मोंमें सञ्चित किये हुए पाप-समुदायका एक पुरुषके

प्रतिष्ठा[1] और मातृकान्यास[2]का भी उपलक्षण है।) भगवान् श्रीरामके पूजन-क्रममें सिंहासनपीठके अधोभाग, ऊर्ध्वभाग तथा पार्श्वभाग आदिमें भी देव-पूजन करनेकी विधि है। पीठके ऊपर मध्यभागमें जो

रूपमें चिन्तन करे। ब्रह्महत्या उस पापपुरुषका मस्तक है, सुवर्णकी चोरी उसकी दो भुजाएँ हैं, सुरापानरूपी हृदयसे वह युक्त है। गुरुपत्नी-गमन ही उसके दो कटिभाग हैं। इन पापों और पापियोंका संसर्ग ही उसके युगल चरण हैं। उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग पातकमय ही है। उपपातक ही उसके रोएँ हैं। उसकी मूँछ-दाढ़ीके बाल और नेत्र लाल हैं। उसके शरीरका रंग काला है और वह अपने हाथोंमें ढाल-तलवार लिये हुए है। ऐसे पापमय पुरुषको अपनी कुक्षिके भीतर दाहिने भागमें स्थित देखते हुए चिन्तन करे। तत्पश्चात् पूरक आदिके क्रमसे अर्थात् पूरक, कुम्भक और रेचकरूप प्राणायामके द्वारा प्राणवायुको रोककर 'यं' बीज एवं वायुके द्वारा उस पापपुरुषके शरीरको सुखा दे। फिर अग्नि-बीज 'रं' के द्वारा अग्नि प्रकट करके उससे उसके शुष्क शरीरको जला डाले। तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिसे युक्त विद्वान् पुरुष यह चिन्तन करे कि उस पापपुरुषके दग्ध शरीरका भस्म मेरी नासिकाके मार्गसे बाहर निकल आया है। तदनन्तर 'वं' इस बीजके द्वारा जल प्रकट करके उससे अपने समस्त शरीरको आप्लावित कर दे। इस प्रकार उस भावनामय दिव्य जलमें स्नान करके जब समस्त शरीर निर्मल एवं देवोपासनाके योग्य हो जाय, तब अपने साथ परमात्मामें लीन हुए पृथिवी आदि तत्त्वोंको पुनः अपनी-अपनी पूर्वावस्थामें पहुँचा दे। फिर जीवात्माको भी परमात्मासे पृथक् करके 'हंसः' इस मन्त्रका जप करते हुए विधिपूर्वक हृदय-कमलपर ले आये। इस प्रकार भूतशुद्धि कर लेना आवश्यक है। भूतशुद्धिके बिना की हुई पूजा अभिचार तथा बिना भक्तिके पूजनकी भाँति विपरीत फल दे सकती है।

१. इस प्रकार भूतशुद्धि करनेके पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। इसका विनियोग इस प्रकार है—'अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुःसामाथर्वाणि छन्दांसि क्रियामयवपुःप्राणाख्या देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रौं कीलकम्, अस्यां मूर्तौ प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः' इस प्रकार विनियोग करके भगवान्‌की प्रतिमा अथवा यन्त्रपर हाथ रखकर निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

'ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः क्रों ह्रीं आं हंसः सोऽहम्, अस्यां मूर्तौ अमुष्य प्राण इह प्राणाः।'

इसका उच्चारण करते समय भावना करनी चाहिये कि इस भगवद्विग्रहमें प्राण-संचार हो रहा है। 'अस्यां मूर्तौ' के आगे 'अमुष्य' के स्थानमें 'श्रीरामस्य' इत्यादि आवश्यकताके अनुसार जोड़ लेना चाहिये।

इसी प्रकार पूर्वोक्त बीजोंको 'ॐ आं....से लेकर....सोऽहम्' तक पुनः पढ़कर 'अस्यां मूर्तौ अमुष्य जीव इह स्थितः' इस वाक्यका उच्चारण करते हुए यह भावना करनी चाहिये कि इस भगवद्विग्रहमें जीवात्मारूपसे भगवान् स्वयं विराजमान हो रहे हैं। इसी प्रकार पुनः 'ॐ आं ह्रीं' इत्यादि पढ़कर 'अस्यां मूर्तौ अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणपाणिपादपायूपस्थानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु' इसका उच्चारण करते हुए विग्रह अथवा यन्त्रमें भगवान्‌की सम्पूर्ण इन्द्रियोंके आविर्भावकी भावना करे। 'अमुष्य' के स्थानपर सर्वत्र 'आराध्यदेव' के नामका षष्ठ्यन्त रूप लेना चाहिये और प्रत्येक कार्यमें तीन-तीन बार पाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् गर्भाधानादि संस्कारकी सिद्धिके लिये पंद्रह बार प्रणव-जप करना आवश्यक है। प्राणप्रतिष्ठाके समय भगवद्विग्रहमें ऋषि आदिका न्यास भी करना चाहिये। उसका प्रकार यों है—'ॐ ब्रह्मविष्णुमहेश्वरऋषिभ्यो नमः' शिरसि। 'ऋग्यजुःसामाथर्वच्छन्दोभ्यो नमः' मुखे। 'प्राणदेवतायै नमः' हृदि। 'आं बीजाय नमः' गुह्ये। 'ह्रीं शक्तये नमः' पादयोः। 'क्रों कीलकाय नमः' नाभौ। इन छः मन्त्रोंका क्रमशः उच्चारण करते हुए सिर, मुख, हृदय, गुह्य (गुदा), दोनों पैर और नाभिका दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे स्पर्श करना चाहिये। किसी-किसीके मतसे प्राणप्रतिष्ठा-मन्त्रमें केवल ब्रह्मा ही ऋषि, विराट् छन्द और प्रणव बीज है।

२. मातृकान्यासका क्रम इस प्रकार है। निम्नाङ्कित वाक्यका उच्चारण करके विनियोग करे—'ॐ अस्य मातृकान्यासमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः सरस्वती देवता भगवत्प्रीतये ललाटाद्यङ्गेषु मातृकावर्णानां न्यासे विनियोगः।' तत्पश्चात् निम्नाङ्कित छः वाक्योंको पढ़कर न्यास करे—१-'अं कं खं गं घं ङं आं' हृदयाय नमः। २-'इं चं छं जं झं ञं ईं' शिरसे स्वाहा। ३-'उं टं ठं डं ढं णं ऊं' शिखायै वषट्। ४-'एं तं थं दं धं नं ऐं' कवचाय हुम्। ५-'ओं पं फं बं भं मं औं' नेत्रत्रयाय वौषट्। ६-'अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः' अस्त्राय फट्। इनमेंसे पहले तीन वाक्योंको पढ़कर दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः हृदय, सिर और शिखाका स्पर्श करना चाहिये। चौथे वाक्यको पढ़कर दाहिने हाथसे बायें और बायें हाथसे दायें कन्धेका एक साथ ही स्पर्श करना चाहिये। पाँचवें वाक्यका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श करना चाहिये तथा छठे वाक्यको पढ़कर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये। तदनन्तर ध्यान करे—'मैं उज्ज्वल कान्ति एवं तीन नेत्रोंसे विभूषित माता सरस्वतीदेवीकी शरण लेता हूँ। उनके मुख, भुजा, चरण, कटिभाग एवं वक्षःस्थल आदि अङ्ग पचास अक्षरोंमें विभक्त हैं। मस्तकपर अर्धचन्द्रजटित चमचमाता हुआ किरीट शोभा पा रहा है। उनके उरोज सब ओरसे उभरे हुए—स्थूल एवं ऊँचे हैं। वे अपने कर-कमलोंमें मुद्रा, अक्षसूत्र, अमृतपूर्ण कलश और विद्या धारण किये हुए हैं।' इस प्रकार ध्यान करके ललाट, मुख-मण्डल, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिका, दोनों कपोल, दोनों ओष्ठ, दोनों दन्तपङ्क्ति, मस्तक, मुख, दोनों बाहुमूल, दोनों कूर्पर (कोहनी), दोनों मणिबन्ध (कलाई), दोनों हाथोंके

अष्टदल कमल है, उसका भी पूजन करे। रत्नमय सिंहासनपर मुलायम, चिकनी तथा सिंहासनके आकारकी तूलिका (रूईदार गद्दी)-की भावना करके उसपर भगवत्स्वरूप आचार्यका पूजन करके पीठके अधोभागमें आराध्य-देवताके आसनके नीचे आधारशक्ति, कूर्म (कच्छप), नाग (शेषनाग) तथा पृथ्वीमय दो कमलोंकी भावना करके उन सबकी पूजा करे[1] ॥ १-२ ॥

विघ्न, दुर्गा, क्षेत्रपाल तथा वाणीका इनके नामके आदिमें बीज लगाकर नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए पूजन करना चाहिये। (नामके आदि अक्षरको ही प्रणव और बिन्दुसे सम्पुटित कर देनेपर वह देवताका बीजमन्त्र बन जाता है। ऐसा ही बीज लगाकर मण्डपके द्वारदेशमें विघ्न आदिकी पूजा करनी चाहिये। पूजाका मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ विं विघ्नाय नमः, ॐ दुं दुर्गायै नमः, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, ॐ वां वाण्यै नमः**)'। फिर पीठके पायोंमें, जो अग्निकोण आदिमें स्थित हैं, क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका पूजन करे।[2] और पीठके अवयवगत पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः अधर्म, अनर्थ, अकाम और अमोक्षकी पूजा करे। फिर पीठके ऊपर मध्य-भागमें उत्तम पुरुषोंद्वारा पूजित सूर्य, चन्द्र एवं अग्निका क्रमशः पूजन करे। यन्त्रमें जो बीज (कर्णिका)-सहित तीन वृत्त (गोलाकार चिह्न) हैं, उन्हें क्रमशः सत्त्व, रज और तमका प्रतीक मानकर चिन्तन और पूजन करना चाहिये[3] ॥ ३-४ ॥

तत्पश्चात् दिशाओं और कोणोंमें स्थित कमलके आठ दलोंकी पूजा करे। इनमेंसे जो दल मध्यवर्ती दिशा अर्थात् कोणोंमें हैं, उनमें आग्नेय कोणसे आरम्भ करके क्रमशः आत्मा (लिङ्ग), अन्तरात्मा (जीव), परमात्मा (ईश्वर) और ज्ञानात्मा (लीला-पुरुषोत्तम)-का पूजन करे[4] तथा पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः माया-तत्त्व, विद्या-तत्त्व, कला-तत्त्व एवं पर-तत्त्वकी पूजा करे।[5] तदनन्तर विमला[6] आदि शक्तियोंका विधिवत् पूजन करे। फिर प्रधान देवताका आवाहन और पूजन करे।[7]

अङ्गुलिमूल, दोनों हाथोंके अङ्गुल्यग्र, दोनों ऊरुमूल, दोनों जानु (घुटने), दोनों गुल्फ (टखने), दोनों पैरोंके अङ्गुलिमूल, दोनों पैरोंके अङ्गुल्यग्र, दोनों पार्श्वभाग, पीठ, नाभि, उदर, हृदय, दायें कन्धे,ककुद् (गलेके पीछेका भाग), बायें कन्धे, हृदयादि दक्षिणहस्त, हृदयादि वामहस्त, हृदयादि दक्षिणपाद, हृदयादि वामपाद, हृदयादि उदर तथा हृदयादि मुख—इन अङ्गोंमें 'अं नमः, आं नमः' इत्यादि रूपसे ५१ मातृकावर्णोंका न्यास करे।

१. आधारशक्तिका ध्यान एक देवीके रूपमें करना चाहिये। वह अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण किये हुए है। उस आधारशक्तिके मस्तकपर भगवान् कूर्म विराजमान हैं, उनकी कान्ति नीले रंगकी है। उनके ऊपर भगवान् अनन्त (शेषनाग)-की स्थिति है, जो ब्रह्ममयी शिलापर आसीन हैं। उनके श्रीअङ्ग कुन्दसदृश गौर हैं। उनके हाथमें चक्र है तथा उन्होंने मस्तकपर वसुन्धरादेवीको धारण कर रखा है। देवी वसुन्धराकी अङ्गकान्ति तमालके समान श्यामल है। वे नील कमल धारण करती हैं। उनके कटिप्रदेशमें लहराता हुआ समुद्र ही मेखला (करधनी)-की शोभा दे रहा है। उक्त वसुन्धरापर एक रत्नमय द्वीप है, जहाँ मणिमय मण्डप शोभा पा रहा है। इस क्रमसे मण्डपतककी पूजा करके उसके प्रवेश-द्वारपर विघ्न आदिकी पूजा करनी चाहिये।

२. धर्म आदिका ध्यान और पूजन-क्रम इस प्रकार है—साधकको उसकी इच्छाके अनुरूप सिद्धि प्रदान करनेवाले चार कल्पवृक्ष हैं, ऐसी भावना करके उनकी पूजा करे। फिर उनके नीचे मण्डलाकार एवं तेजसे जाज्वल्यमान वेदीकी भावना करके उसकी पूजा करे। उस वेदीपर रत्नमय पीठका धर्म आदिके साथ पूजन करे। धर्मका रंग लाल है, वह वृषभरूपसे स्थित है। अर्थका रंग साँवला है, वह सिंहकी आकृति धारण किये हुए है। कामका रंग हल्दीके समान पीला है, वह भूतकी आकृतिमें है तथा मोक्षका रंग नीला है, उसका आकार हाथीके समान है। पीठके पायोंमें अग्निकोण आदिमें धर्म आदिका तथा पीठके अन्य अवयवोंमें पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः अधर्म आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् कमलका पूजन आरम्भ करे।

३. ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः—इन मन्त्रोंसे सत्त्वादिरूप तीनों वृत्तोंका पूजन करे।

४. पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—ॐ आत्मने नमः, अन्तरात्मने नमः, परमात्मने नमः, ज्ञानात्मने नमः।

५. मायातत्त्वाय नमः। विद्यातत्त्वाय नमः। कलातत्त्वाय नमः। परतत्त्वाय नमः।

६. विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—ये पीठकी शक्तियाँ है। इनका स्थान अष्टदल कमलके केसरोंमें है। ये वर और अभयकी मुद्राओंसे युक्त होती हैं।

७. 'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय····' इत्यादि मूल-मन्त्रका उच्चारण करके 'आहूतो भव' यों कहकर आवाहनकी मुद्रा दिखाये। दोनों हाथोंकी अञ्जलि बनाकर अनामिका अँगुलियोंके मूलपर्वपर अँगूठेको लगा देना—यह आवाहनकी मुद्रा है। यही अधोमुखी (नीचेकी

इसके बाद जल आदिसे अङ्गव्यूहोंकी[१] पूजा करके धृष्टि[२] आदि, लोकपालगण,[३] उनके अस्त्र,[४] वसिष्ठ[५] आदि मुनि तथा नील[६] आदिके साथ चन्दन आदि उपचारों तथा नाना प्रकारके श्रेष्ठ उपहारोंद्वारा श्रीरघुनाथजीकी आराधना करे। उनकी पूजा करके विधिपूर्वक जप आदि भी उन्हें समर्पित करे। 'जो ऐसी महिमावाले, जगत्के आधारभूत और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, जिनके करकमलोंमें गदा, चक्र, शङ्ख और पद्म शोभा पा रहे हैं तथा जो भव-बन्धनका नाश करनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ।'[७] यों कहकर उनकी वन्दना करे। जो इस प्रकार भगवान् श्रीरामका ध्यान करते हैं, वे सब लोग मोक्ष (भगवान्का परमधाम) प्राप्त कर लेते हैं। विश्वव्यापी भगवान् श्रीराम लीला-संवरणकालमें सशरीर अन्तर्धान हो गये थे। (अन्य प्राणियोंकी भाँति उन्होंने देहत्याग नहीं किया था।) शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मरूप उनके आयुध भी साथ ही अन्तर्धान हुए। उन्होंने अपने स्वाभाविक स्वरूपको धारणकर सीताजीके साथ परमधाममें पदार्पण किया। उस समय उनके साथ सारा परिवार—पुरजन, परिजन, समस्त भाई, समस्त प्रजाजन तथा विभीषण आदि शत्रुके वंशज भी परमधाममें चले गये। जो उनके भक्त होते हैं, वे मनोवाञ्छित भोगोंको पाते हैं, प्राप्त हुए भोगोंका उपभोग करते हैं तथा अन्तमें वे भी भगवान्के परमपदको प्राप्त करते हैं। जो लोग सम्पूर्ण कामनाओं और अर्थोंको देनेवाली इन ऋचाओंका पाठ करते हैं, वे शुद्धान्त:करण होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जो पाठ करते हैं, वे निर्मल अन्त:करणवाले होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं॥ ५—१०॥

॥ अथर्ववेदीय श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ओर मुखवाली) कर दी जाय तो स्थापिनी (बिठानेवाली) मुद्रा कहलाती है। अँगूठोंको ऊपर उठाकर दोनों हाथोंकी संयुक्त मुट्ठी बाँध लेनेपर संनिधापिनी (निकट सम्पर्कमें लानेवाली) मुद्रा बन जाती है। यदि मुट्ठीके भीतर अँगूठेको डाल दिया जाय तो संरोधिनी (रोक रखनेवाली) मुद्रा कहलाती है। दोनों मुट्ठियोंको उत्तान कर देनेपर इसका नाम सम्मुखीकरणी (सम्मुख करनेवाली) मुद्रा होता है।

१. हृदय, मस्तक आदि भिन्न-भिन्न अङ्गोंकी जल आदिसे पूजा ही अङ्गव्यूहोंकी पूजा है।

२. धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र।

३. इन्द्र, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्रमा, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त।

४. वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, शूल, चक्र और पद्म—ये क्रमशः इन्द्र आदिके आयुध हैं।

५. वसिष्ठ, वामदेव, जाबाल, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, वाल्मीकि, नारद, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार।

६. नील, नल, सुषेण, मैन्द, शरभ, द्विविद, धनद, गवाक्ष, किरीट, कुण्डल, श्रीवत्स, कौस्तुभ, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म—ये सोलह नील आदि हैं।

७. एवंभूतं जगदाधारभूतं रामं वन्दे सच्चिदानन्दरूपम्। गदारिशङ्खाब्जधरं भवारिं स यो ध्यायेन्मोक्षमाप्नोति सर्वः॥